क़ानून फैलाने वाले में अच्छे किरदार की अहमियत

हुज्जतुल इस्लाम वलमुस्लिमीन मौलाना सै० हसन नक़वी साहब

हमारे सामने लगभग रोज़ ऐसे वाक़िये सामने आते रहते हैं कि एक आदमी ऐसा है जिसकी बातों पर लोग अमल करते हैं और एक दूसरे आदमी की बातों पर इत्मिनान नहीं किया जाता है लोग अगर किसी बात को किसी से कहें तो वह इस क़ाबिल नहीं मानी जाती कि उस पर अमल किया जाए लेकिन वही बात अगर किसी अज़ीम शख़सियत की ज़बान से निकल गयी तो उसे मानना ज़रूरी समझा जाता है आख़िर ये फ़र्क़ क्यों है? क्या एक ही जैसे गोश्त और पोस्त के इन्सान अलग-अलग रूहें रखते हैं? जब हर तरह रूहानियत और जिस्मानियत में सब एक हैं तो फिर ये फ़र्क़ कैसे? तो बात ये है कि अलफ़ाज़ ज़ात के एतेबार से बिल्कुल ही मुर्दा और बेरूह जिस्म हैं जिनको ख़ुद इन्सान ही ने बनाया है यही अलफ़ाज़ सभी ख़ास और आम की ज़बान पर हैं लेकिन इन्हीं अलफ़ाज़ में रूह उस वक़्त आती है जब ज़बान के हुस्ने अलफ़ाज़ ही के साथ अमली एतेबार से किरदार की अच्छाई भी हो जब वही बेजान अलफ़ाज़ उस ज़बान से निकलते हैं जिसका ख़ुद अमल भी है, तो अब बातों में वज़न होता है और अलफ़ाज़ असरदार हो जाते हैं और जब वही अलफ़ाज़ बेअमल की ज़बान से निकलते हैं तो ज़िन्दा दिमाग़ मुर्दा अलफ़ाज़ के जिस्म को फेंक देते हैं। जिसके बाद अलफ़ाज़ बेअसर साबित होते है। इसी वजह से अगर किसी क़ानून के हिफ़ाज़त करने वाले का अमल दाग़दार और दामन गर्द भरा है तो वह क़ानून के मफ़ाद को पूरा नहीं कर सकेगा, क्योंकि क़ानून का फ़ायदा उसी वक़्त मिलता है जब उस क़ानून पर लोग अमल करें और लोग उस क़ानून के ज़िम्मेदार की बातों को अमल की सूरत में पेश नहीं कर सकते क्योंकि उसकी बातें लोगों के लिए बेअसर आवाज़ें हैं इसलिए क़ानून का मफ़ाद पूरा न हो सकेगा। ऐसा क़ानून का मुहाफ़िज़ जो अमली एतेबार से कोरा है, वह क़ानून की सही अहमियत और उसूलों की सही क़द्र और क़ीमत दुनिया को नहीं समझा सकता। यह हर शख़्स के ख़याल की हदों से क़रीब है कि अगर किसी चीज़ को हम ख़ुद समझे हुए नहीं हैं तो दूसरे को पूरे तौर से समझा भी नहीं सकते। क़ानून का बेअमल मुहाफ़िज़ ख़ुद पूरी तरह क़ानून को नहीं समझा तो दूसरे के लिए वह बेहतरीन मुबल्लिग़ साबित नहीं हो सकता इसलिए कि अगर ये ख़ुद क़ानून की सही क़द्र और क़ीमत को समझ चुका होता तो उस पर अमल करता। अगर हम किसी मरज़ के लिए किसी दवा को फ़ायदेमन्द समझ लेते हैं तो फिर उसको इस्तेमाल करते हैं। जब हम किसी जमाअत से मुतमइन हो जाते हैं तो उसी को अपने में मिलाते हैं इसी तरह अगर ये क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाला क़ानून को इज्तेमाई बीमारियों का कारगर नुस्ख़ा समझता होता तो ख़ुद क्यों न अमल करता? मालूम हुआ कि देखने में जो क़ानून की हिफ़ाज़त करने वाला है, वह ख़ुद पूरी तरह क़ानून के

हुस्न और कमाल को हर हर पहलू से अच्छी तरह नहीं समझा है उसकी नासमझी में कोई उस क़ानून के मुख़ालिफ़ भी ख़याल है जो बेराह रवी की वजह बन रहा है और फिर उस क़ानून पर इसी तहतश्शुअूरी ख़याल को ये तरजीह भी देता है और अगर ऐसा नहीं है तो फिर ये मुख़ालेफ़त अमलन क्यों कर रहा है? मालूम हुआ कि इस क़ानून के मुख़ालिफ़ मुहर्रिक को ये तरजीह देता है तो जब ये क़ानून का मुहाफ़िज़, खुद क़ानून को नहीं समझता है तो दूसरों को क्या समझा सकता है? और जब तक दूसरे लोगों के सामने पूरी तरह क़ानून को खोलकर न बयान किया जाए और पूरी तरह क़ानून की अहमियत को न समझाया जाए उस वक़्त तक तबलीग़ कामयाब नहीं हो सकती। एक कामयाब मुबल्लिग़ वहीं हो सकता है जो पूरी तरह क़ानून के हर शोब-ए-कमाल पर अमल करने वाला हो, हर तरह से क़ानून के हुस्न और ख़ूबी को समझ चुका हो। जब बेदाग़ किरदार का मालिक अपने क़ानून को दुनिया के सामने पेश करेगा तो उसकी लफ़्ज़ें खोखली दीवारें न होंगी बल्कि गराँक़द्र हक़ीक़तें और दिलों में एतेराफ़े हुस्ने क़ानून के मज़बूत क़िले होंगे। अगर ग़ौर किया जाए तो हमारी ज़ाहिरी निगाहें आने वाली ज़िन्दगी का मुताला नहीं कर सकतीं हैं ज़्यादातर लोग ऐसे होते हैं जिनको सीधे तौर पर क़ानून के हुस्न और ख़ूबी, उसकी अहमियत और ज़रूरत का पूरा एहसास नहीं होता, लेकिन इसके बाद भी ऐसे लोग किसी क़ानून को तो क़ुबूल नहीं करते और किसी क़ानून को क़ुबूल कर लेते हैं? इसकी सिर्फ़ एक वजह ये है कि अगर नुक़सान पहुँचाने वाला क़ानून किसी ऐसे शख़्स ने पेश किया जो अपनी पिछली ज़िन्दगी में इन्तिहाई पाक और साफ़ ज़िन्दगी का मालिक था तो अवाम अपने पिछले अच्छे तजुरबे की बुनियाद पर क़ुबूल कर लेते हैं और अगर किसी ऐसे शख़्स ने किसी निज़ाम की तरफ़ दावत दी जिसकी पिछली ज़िन्दगी शक वाली और इत्मिनान के क़ाबिल नहीं गुज़री है चाहे वह क़ानून कैसा ही उमदा, जामे, चौमुखी और फ़ायदेमन्द क्यों न हो, लेकिन ठुकरा दिया जाता है, क्योंकि अवाम के ज़हनों पर जो निशान मौजूद है वह सीधे तौर पर क़ानून पर असर डालता है और लोग फ़ायदे वाले क़ानून से महरूम हो जाते हैं इसमें बेचारी अवाम मजबूर भी है, क्योंकि क़ानून को क़ुबूल करने या न करने का सवाल उस वक़्त पैदा होता है जब क़ानून की तरफ़ दावत दी जा रही हो इस वक़्त हमको मालूम नहीं कि आइन्दा ये क़ानून का दाअी और मुबल्लिग़े निज़ाम किस ज़िम्मेदारी से अपने फ़राएज़ को अन्जाम देगा ये तजुरबा तो उसी वक़्त होगा जब हम सिस्टम को मानकर उसको अपने कामों का मुनज़्ज़म समझ लें (या क़ानून लागू करने में कमी करेगा) इसलिए इसके अलावह कोई और सूरत आइन्दा सोंचें पिछले अच्छे ख़यालों के हाथों में मुस्तक़बिल की तक़दीर दे दें यही वजह है कि जब कोई निज़ाम अपना किसी को नुमाइन्दा बनाकर अवाम के रुजहानात को अपनी तरफ़ मुतवज्जेह कराना चाहता है और अपने लिये आम राय को हासिल करना चाहता है तो हमेशा किसी ऐसे को अपना नुमाइन्दा तै करता है जो पहले से अवाम में मक़बूल हो और अवाम का पहला फ़रीज़ा ये होता है कि वह पहले हर नुमाइन्दे की पिछली ज़िन्दगी का जायज़ा लें, माज़ी का मुताला करें पहले के ताल्लुक़ात पर नज़र डालें जिसके पिछले किरदार इत्मिनान वाले हों फ़ौरन उसके हमख़याल हो जाएं इसलिए मालूम हुआ कि हर निज़ाम के मुहाफ़िज़ और मुबल्लिग़ को जिस तरह उस ज़माने में कि जब वह क़ानून का मुहाफ़िज़ है बहुत ही एहतियात वाला और ज़िम्मेदार होना चाहिए इसी तरह पिछली ज़िन्दगी में भी बेदाग़ पाक-साफ़ और इत्मिनान वाला होना चाहिए।

